



Neutral Citation No. - 2026:AHC:126991

आरिक्त

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 528 के तहत आवेदन संख्या- 8191 वर्ष 2026

रयान अहमद उर्फ रयान एवं 3 अन्य

.....आवेदक(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....विपक्षी(गण)

आवेदक(गण) के अधिवक्ता : दीक्षा गुप्ता, सिद्धार्थ श्रीवास्तव

विपक्षी(गण) के अधिवक्ता : फिरदोस अहमद, जी.ए.

न्यायालय संख्या - 5

माननीय न्यायमूर्ति संजीव कुमार

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ श्रीवास्तव, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार मिश्रा तथा विपक्षी संख्या- 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री फिरदोस अहमद को सुना गया तथा अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 528 के तहत यह आवेदन थाना देवगाँव, जिला आजमगढ़ से संबंधित वाद अपराध संख्या- 152 वर्ष 2025 से उद्भूत आपराधिक वाद संख्या- 3123961 वर्ष 2025 (राज्य बनाम अखलाख), अंतर्गत धारा 324(4), 352, 351(3) बी.एन.एस. में दिनांक 17.07.2025 के आरोप पत्र और दिनांक 15.12.2025 के संज्ञान/समन आदेश के साथ-साथ संपूर्ण कार्यवाही को निरस्त करने के लिए दायर किया गया है।

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



3. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि विपक्षी संख्या- 2, अफ़सरी ने आवेदकों के विरुद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जो वाद अपराध संख्या- 152 वर्ष 2025, अंतर्गत धारा 351(3), 352, 324(4) बी.एन.एस. के तहत पंजीकृत की गई थी जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि दिनांक 28.04.2025 को रात्रि लगभग 09:00 बजे, आवेदकों ने उसके घर के सामने एक सार्वजनिक नाली को क्षतिग्रस्त कर दिया और जब उसने उनके इस कृत्य का विरोध किया, तो उन्होंने गाली-गलौज की और धमकी दी। आज फिर, अर्थात् दिनांक 05.05.2025 को, आवेदकों ने उसे अपशब्द कहे और उसके पक्के चबूतरे व नाली को तोड़ने की धमकी दी तथा जान से मारने की गंभीर धमकियां भी दीं।

4. इस सूचना पर आवेदकों के विरुद्ध धारा 324(4), 352, 351(3) बी.एन.एस. के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई। विवेचना के पश्चात आरोप पत्र दाखिल किया गया है और संबंधित न्यायालय ने उक्त अपराध का संज्ञान लेते हुए आवेदकों को समन जारी किया है।

5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी विलंब का कोई उचित स्पष्टीकरण दिए बिना आठ दिनों के बाद दर्ज कराई गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि गवाह हितबद्ध गवाह हैं और उनके बयानों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया है कि विवेचक द्वारा किसी भी स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की गई है और वास्तव में, यह प्राथमिकी आवेदकों और उनके परिवार द्वारा ग्राम प्रधान व उनके समर्थकों के विरुद्ध दर्ज कराई गई विभिन्न शिकायतों और मामलों के प्रतिशोध में दर्ज कराई गई है।

6. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या- 4 एक पत्रकार है, जिसने सोशल मीडिया पर एक समाचार प्रसारित किया था और इस प्रकार, उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। यह अपराध गैर-संज्ञेय था और संबंधित न्यायालय ने गलत तरीके से अपराध का संज्ञान लिया है। संज्ञान और समन आदेश कानून की नजर में दोषपूर्ण है, क्योंकि विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान लेते समय अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया है।

7. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या- 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदकों ने अपराध कारित किया है और प्राथमिकी सही तथ्यों पर दर्ज कराई गई थी। विवेचक ने आवेदकों

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



के विरुद्ध ठोस साक्ष्य एकत्र करने के बाद मामले में आरोप पत्र दाखिल किया है। अपराध संज्ञेय है और संज्ञान आदेश कानून के अनुसार है। इसलिए, इस आवेदन में कोई बल नहीं है और यह खारीज किए जाने योग्य है।

8. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आक्षेपित आरोप पत्र, संज्ञान/समन आदेश और संपूर्ण कार्यवाही का समर्थन किया है।

9. दोनों पक्षों के तर्कों के आलोक में और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन से, यह विवाद में नहीं है कि आवेदक प्राथमिकी में नामजद हैं और विवेचना के निष्कर्ष के बाद उनके विरुद्ध धारा 324(4), 352, 351(3) बी.एन.एस. के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया है, जिस पर संबंधित न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया है।

10. आवेदकों की ओर से दी गई पहली दलील यह है कि आरोप पत्र गैर-संज्ञेय अपराधों अर्थात् धारा 324(4), 352, 351(3) बी.एन.एस. में दाखिल किया गया था, इसलिए संज्ञान और समन आदेश दोषपूर्ण है क्योंकि जिन मामलों में गैर-संज्ञेय अपराध में आरोप पत्र दाखिल किया जाता है, वहाँ बी.एन.एस.एस. की धारा 2(1)(ज) के आलोक में कार्यवाहियों का संचालन एक परिवाद मामले के रूप में किया जाना चाहिए, इसलिए संज्ञान और समन आदेश बरकरार रखने योग्य नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि जहाँ तक धारा 351(3) बी.एन.एस. के तहत अपराध का संबंध है, इसे विधायिका द्वारा गैर-संज्ञेय माना गया है और बी.एन.एस.एस. में ऐसा कोई संशोधन नहीं है जो इसे उत्तर प्रदेश राज्य में संज्ञेय बनाए।

11. मैं आवेदकों की ओर से प्रस्तुत इस दलील से सहमत नहीं हूँ। इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा **विनय कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या- 13827 वर्ष 2024**, निर्णय दिनांक 03.10.2024 में एक निर्णय पारित किया गया है, जहाँ यही मुद्दा विचार के लिए आया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर चर्चा करने के बाद, यह मत व्यक्त किया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की प्रथम अनुसूची के तहत, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई अधिसूचना दिनांक 31.07.1989 को बी.एन.एस.एस. की अनुसूची-1 को संशोधित करने के लिए जारी माना जाएगा, जिससे धारा

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



351(2) बी.एन.एस. (संबंधित धारा 506 आईपीसी) को संज्ञेय और गैर-जमानती बनाया जा सके और ऐसी अधिसूचना पहले से ही बी.एन.एस.एस. की धारा 531(2) द्वारा सुरक्षित है, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 484 के समरूप है। इसलिए, उत्तर प्रदेश राज्य में, धारा 351(2) बी.एन.एस. अधिसूचना दिनांक 31.07.1989 के आलोक में संज्ञेय और गैर-जमानती रहेगी, जो बी.एन.एस.एस. द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता को निरस्त किए जाने के समय लागू थी। **विनय कुमार पांडे** (उपरोक्त) के निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

9. बी.एन.एस.एस. की धारा 531(2) के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत जारी की गई अधिसूचना, जो बी.एन.एस.एस. के प्रारंभ होने से ठीक पहले लागू थी, उसे बी.एन.एस.एस. के तत्स्थानी प्रावधान के तहत जारी माना जाएगा।

10. इसी तरह, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 8 के अनुसार, किसी केंद्रीय अधिनियम को निरस्त कर उसे पुनः अधिनियमित किए जाने पर, किसी भी अधिनियम के तहत निरस्त अधिनियम का संदर्भ पुनः अधिनियमित कानून का संदर्भ माना जाएगा। इसलिए, आईपीसी और सीआरपीसी के निरस्त होने के बाद आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 में आईपीसी और सीआरपीसी का संदर्भ बी.एन.एस. और बी.एन.एस.एस. का संदर्भ माना जाएगा। इसलिए, यदि राज्य सरकार द्वारा आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आईपीसी और सीआरपीसी में कोई संशोधन किया जाता है, तो आईपीसी और सीआरपीसी के निरस्त होने के बाद वही संशोधन बी.एन.एस. और बी.एन.एस.एस. में भी माना जाएगा।

11. उत्तर प्रदेश राज्य ने आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 जो कि एक केंद्रीय कानून है, की धारा 10 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 जारी की थी, जिसके द्वारा सीआरपीसी की प्रथम अनुसूची में संशोधन किया गया था और धारा 506 आईपीसी को संज्ञेय अपराध बनाया गया था यदि वह उत्तर प्रदेश राज्य के किसी भी जिले में कारित किया जाता है। यहाँ यह उल्लेख

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

करना प्रासंगिक है कि आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 की धारा 10, जो अभी भी लागू है, ने राज्य सरकार को धारा 506 आईपीसी के तहत अपराध सहित कुछ अपराधों को संज्ञेय और गैर-जमानती बनाने के लिए अधिकृत किया है। इसलिए, राज्य की अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 द्वारा धारा 506 आईपीसी में किया गया संशोधन, जो इसे संज्ञेय और गैर-जमानती बनाता है, उसे बी.एन.एस. की धारा 351(2) के संबंध में जारी अधिसूचना माना जाएगा। संदर्भ के लिए उत्तर प्रदेश राज्य की अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 नीचे उद्धृत की जा रही है:-

"आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932 (1932 का अधिनियम संख्या XXIII) की धारा 10 सपठित सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (1897 का अधिनियम संख्या 10) की धारा 21 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और इस संबंध में जारी अधिसूचनाओं के अधिक्रमण में, राज्यपाल महोदय यह घोषित करते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के तहत दंडनीय कोई भी अपराध जब उत्तर प्रदेश के किसी भी जिले में कारित किया जाता है, तो वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम संख्या 2) में निहित किसी भी बात के बावजूद संज्ञेय और गैर-जमानती होगा।"

12. सर्वोच्च न्यायालय ने भी एयर्स रोज़िग्स (उपरोक्त) के मामले में इस मुद्दे पर विचार किया और माना कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1998 में किया गया संशोधन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किया गया संशोधन माना जाएगा और ऐसा संशोधन सीआरपीसी, 1973 की धारा 484 के तहत सुरक्षित रहेगा। एयर्स रोज़िग्स (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 8 और 9 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"8. आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932 की धारा 10, जिसके तहत उक्त अधिसूचना जारी की गई है, निम्नानुसार है:

"10. कुछ अपराधों को संज्ञेय और गैर-जमानती बनाने की राज्य सरकार की शक्ति-
(1) [राज्य सरकार] [ए.एल.ओ., 1950 द्वारा "प्रांतीय सरकार" के स्थान पर प्रतिस्थापित] [आधिकारिक राजपत्र] [ए.ओ., 1937 द्वारा "स्थानीय राजपत्र" द्वारा

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



प्रतिस्थापित] में अधिसूचना द्वारा, यह घोषित कर सकती है कि दंड संहिता, 1860 की धारा 186, 188, 189, 190, 228, 295-क, 298, 505, 506 या 507 के अधीन दंडनीय कोई भी अपराध, जब अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किसी क्षेत्र में कारित किया जाता है, तो वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) में किसी बात के होते हुए भी संज्ञेय होगा, और तदनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 को, जब तक ऐसी अधिसूचना लागू रहती है, संशोधित माना जाएगा।

(2) [राज्य सरकार] [ए.एल.ओ., 1950 द्वारा "प्रांतीय सरकार" के स्थान पर प्रतिस्थापित], उसी रीति से और उन्हीं शर्तों के अधीन रहते हुए, और उसी प्रभाव के साथ, यह घोषित कर सकती है कि दंड संहिता, 1860 की धारा 188 या धारा 506 के अधीन दंडनीय अपराध गैर-जमानती होगा।"

इसमें कोई विवाद नहीं है कि 1932 का अधिनियम एक केंद्रीय कानून है और आज भी यह प्रभावी है तथा धारा 10 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

9. इन परिस्थितियों में, केवल इसलिए कि 1898 की संहिता को निरस्त कर दिया गया है और उसके स्थान पर 1973 का सीआरपीसी आ गया है, स्थिति प्रभावित नहीं हो सकती। सीआरपीसी, 1973 की धारा 484 के साथ-साथ सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 8(1) ने उस अधिसूचना को सुरक्षित रखा है जो 1898 के सीआरपीसी के तहत जारी की गई हो सकती है। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 8 इस प्रकार है:

"8. निरस्त अधिनियमों के संदर्भों का अर्थान्वयन- (1) जहाँ यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद बनाया गया कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियम, किसी पूर्ववर्ती अधिनियम के किसी प्रावधान को निरस्त करता है और पुनः अधिनियमित करता है, चाहे उसमें संशोधन हो या न हो, तो किसी अन्य अधिनियम में या किसी दस्तावेज में इस प्रकार निरस्त किए गए प्रावधान का संदर्भ, जब तक



कि कोई भिन्न इरादा प्रकट न हो, पुनः अधिनियमित प्रावधान का संदर्भ माना जाएगा।

(2) जहाँ 15 अगस्त, 1947 के पहले, यूनाइटेड किंगडम की संसद के किसी अधिनियम ने किसी पूर्ववर्ती अधिनियमन के किसी प्रावधान को संशोधन के साथ या बिना संशोधन के निरसित और पुनः अधिनियमित किया है, वहाँ किसी केंद्रीय अधिनियम में या किसी विनियम या लिखत में इस प्रकार निरसित प्रावधान के प्रति निर्देश को, जब तक कि कोई भिन्न आशय प्रतीत न हो, इस प्रकार पुनः अधिनियमित प्रावधान के प्रति निर्देश के रूप में समझा जाएगा।

इन परिस्थितियों में, हम आक्षेपित आदेशों में अपनाए गए दृष्टिकोण को बनाए रखने में असमर्थ हैं।"

13. यह मुद्दा इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ के समक्ष माता सेवक उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या- 7215 वर्ष 1994, निर्णय दिनांक 08.09.1995 के मामले में विचारार्थ आया। उस मामले में पूर्ण पीठ ने माना कि आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 वैध है और आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए धारा 506 आईपीसी को संज्ञेय और गैर-जमानती बनाने वाली राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 भी वैध है। इस मामले में, पूर्ण पीठ ने सर्वोच्च न्यायालय के अर्नोल्ड रॉड्रिक्स एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य; एआईआर 1966 एससी 1788 के निर्णय के साथ-साथ गुजरात उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के विनोद राव बनाम गुजरात राज्य; 1980 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 86 के निर्णय पर अवलम्ब लिया और माता सेवक उपाध्याय (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 108, 109, 110 में जो टिप्पणियां कीं, वे नीचे उद्धृत की जा रही हैं:-

"108. इस प्राधिकार से यह निष्कर्ष निकलता है कि लचीलेपन के नियम को बनाए रखने के लिए, जो प्रशासन चलाने के लिए अत्यंत आवश्यक है, कुछ ऐसी शक्तियों का प्रत्यायोजन आवश्यक है जो मूल रूप से विधायी प्रकृति की नहीं हैं। विधायिका

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



समय-समय पर उत्पन्न होने वाली सभी स्थितियों को कवर करने के लिए कानून बनाने हेतु हर समय नहीं बैठ सकती है, और इसलिए, आवश्यक विधायी नीति निर्धारित होने के बाद, विधायिका सुचारु प्रशासन के हित में आवश्यक बदलाव करने का कार्य राज्य सरकार पर छोड़ सकती है। विधायिका ने धारा 506 आईपीसी के तहत अपराध बनाया है, और इसके विचारण के लिए आवश्यक प्रक्रिया भी निर्धारित की है। जहाँ तक उस अपराध के संज्ञेय या जमानती होने का संबंध है, राज्य सरकार को प्रशासन की आवश्यकताओं के आधार पर अपराध को संज्ञेय या गैर-जमानती बनाने के लिए 1932 के अधिनियम की धारा 10 के तहत अनुसूची में बदलाव करने की शक्ति दी गई है। अर्नोल्ड रॉड्रिक्स (उपरोक्त) में प्रतिपादित नियम के आलोक में, सीआरपीसी की अनुसूची में संशोधन करने के लिए राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति अनुज्ञेय है। जो संशोधित किया गया है वह वह अपराध नहीं है जिसे विधायिका ने आवश्यक विधायी शक्ति के प्रयोग में घोषित किया है। धारा 13 के बल पर किया गया संशोधन ऐसा है जो आवश्यक विधायी शक्ति पर अधिभावी नहीं होता है।

109. इन कारणों से, 1932 के अधिनियम की धारा 10 और साथ ही 2 अगस्त, 1989 की अधिसूचना, दोनों को वैध माना गया है।

110. पूर्वोक्त आधार पर, 1989 के अधिनियम की धारा 3, 4, 7, 8 और 14 तथा 1932 के अधिनियम की धारा 10 और अधिसूचना संख्या 777/VIII-9-4 (2) (87), दिनांक 31 जुलाई, 1989, जो उत्तर प्रदेश राजपत्र (असाधारण) भाग IV, खंड ख, दिनांक 2 अगस्त, 1989 में प्रकाशित हुई थी, वैध मानी जाती हैं।"

14. दंड प्रक्रिया संहिता (समवर्ती सूची) सूची-III में आती है। इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 246(2) के आलोक में संसद और राज्य विधायिका दोनों ही इसमें संशोधन कर सकते हैं, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"अनुच्छेद 246(2)- खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद को और खंड (1) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मंडल को भी, सातवीं अनुसूची की सूची



III में जिसे इस संविधान में 'समवर्ती सूची' कहा गया है, प्रगणित विषयों में से किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है।"

15. हालांकि, यदि संसद और राज्य विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के बीच कोई विसंगति होती है, तो राज्य विधायिका द्वारा बनाए गए ऐसे कानून को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित किया जाएगा और भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) के आलोक में राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही वह उस राज्य में प्रभावी होगा, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"अनुच्छेद 254(2)- जहाँ समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी एक विषय के संबंध में किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि में कोई ऐसा प्रावधान अंतर्विष्ट है जो संसद द्वारा पहले बनाई गई विधि या उस विषय के संबंध में किसी विद्यमान विधि के प्रावधानों के विरुद्ध है, तो उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि, यदि उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा गया है और उसकी अनुमति मिल गई है, तो उस राज्य में प्रभावी होगी:

परंतु इस खंड की कोई भी बात संसद को उसी विषय के संबंध में कोई भी विधि बनाने से, जिसके अंतर्गत ऐसी विधि भी है जो राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि में जोड़ती है, संशोधन करती है, परिवर्तन करती है या उसे निरस्त करती है, किसी भी समय निवारित नहीं करेगी।"

16. यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता संसद द्वारा अधिनियमित की गई है, जिसने आईपीसी की धारा 506 को गैर-संज्ञेय बनाया था, परंतु राज्य ने अपनी अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 द्वारा इसे एक संज्ञेय अपराध बना दिया। सामान्य परिस्थितियों में, मामले को राष्ट्रपति के विचारार्थ भेजा गया होता और राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही राज्य द्वारा किया गया संशोधन राज्य में प्रभावी होता। हालांकि, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 एक केंद्रीय अधिनियम है और यह अधिनियम स्वयं राज्य सरकार को दंड प्रक्रिया संहिता की प्रथम अनुसूची में आईपीसी की धारा 506 को संज्ञेय

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अपराध बनाने के लिए अधिकृत करता है। इसलिए, इसे राज्य में प्रभावी बनाने के लिए भारत के राष्ट्रपति की अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।

17. इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हरीशंकर बागला एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य; (1954) 1 एससीसी 978 के मामले में भी विचार किया गया था। इस मामले में मुद्दा यह था कि यदि संसद का अधिनियम स्वयं केंद्रीय अधिनियम में संशोधन करने के प्रभाव वाला आदेश जारी करने की अनुमति देता है, तो यह संशोधन राज्य सरकार द्वारा किया गया नहीं माना जाएगा बल्कि वही केंद्रीय अधिनियम की विधायी घोषणा है। यह संशोधन इस अधिनियम के अलावा किसी अन्य अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी भी असंगति के बावजूद प्रभावी होगा। हरीशंकर बागला (उपरोक्त) का पैराग्राफ संख्या 21 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"21. हालांकि, तर्क के लिए यह स्वीकार करते हुए कि धारा 3 के तहत दिए गए आदेश और किसी विद्यमान विधि के प्रावधानों के बीच विसंगति की सीमा तक, वह विद्यमान विधि विवक्षित रूप से निरस्त हो जाती है, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह निरसन प्रत्यायुक्त के किसी कृत्य द्वारा नहीं है, बल्कि यह निरसन स्वयं संसद के विधायी कृत्य द्वारा है। धारा 6 को अधिनियमित करके संसद ने स्वयं यह घोषित किया है कि धारा 3 के तहत दिया गया आदेश इस अधिनियम के अलावा किसी अन्य अधिनियम में इस आदेश की किसी भी असंगति के बावजूद प्रभावी होगा। यह प्रत्यायुक्त द्वारा की गई घोषणा नहीं है बल्कि विधायिका ने स्वयं धारा 6 में इस प्रकार अपनी इच्छा घोषित की है। विवक्षित निरसन धारा 6 में अंतर्विष्ट विधायी घोषणा के बल पर है न कि धारा 3 के तहत प्रत्यायुक्त द्वारा दिए गए आदेश के बल पर। प्रत्यायुक्त की शक्ति केवल धारा 6 के तहत आदेश देने की है। एक बार जब प्रत्यायुक्त ने वह आदेश दे दिया तो उसकी शक्ति समाप्त हो जाती है। इसके बाद धारा 6 प्रभावी होती है जिसमें संसद ने घोषित किया है कि जैसे ही ऐसा आदेश अस्तित्व में आता है, वह इस अधिनियम के अलावा किसी अन्य अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी भी असंगति के बावजूद प्रभावी होगा। संसद सर्वोच्च होने के कारण,

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



वह निश्चित रूप से किसी भी पूर्व-विद्यमान विधि के प्रावधानों को विवक्षित रूप से निरस्त या समाप्त करने वाला कानून बना सकती थी और संसद के स्वयं के कृत्य पर अत्यधिक प्रत्यायोजन के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती थी। धारा 6 के प्रावधानों में कोई प्रत्यायोजन शामिल ही नहीं है और उस धारा को उस आधार पर असंवैधानिक नहीं ठहराया जा सकता था।"

18. इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हरी शंकर बागला (उपरोक्त) के मामले में प्रतिपादित कानून के आलोक में, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य द्वारा केंद्रीय अधिनियम में भी संशोधन किया जा सकता है, जो स्वयं एक केंद्रीय कानून है और विसंगति की स्थिति में ऐसी अधिसूचना में राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

19. उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की प्रथम अनुसूची के तहत आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम की धारा 10 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 को बी.एन.एस.एस. की अनुसूची-1 को संशोधित करने के लिए जारी माना जाएगा, जिससे धारा 351(2) बी.एन.एस. (संबंधित धारा 506 आईपीसी) को संज्ञेय और गैर-जमानती बनाया जा सके और ऐसी अधिसूचना पहले से ही बी.एन.एस.एस. की धारा 531(2) द्वारा सुरक्षित है, जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 484 के समरूप है। इसलिए, उत्तर प्रदेश राज्य में, धारा 351(2) बी.एन.एस. अधिसूचना दिनांक 31.7.1989 के आलोक में संज्ञेय और गैर-जमानती रहेगी, जो बी.एन.एस.एस. द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता को निरस्त किए जाने के समय लागू थी।

12. उपरोक्त चर्चा और विनय कुमार पांडे (उपरोक्त) के निर्णय के आलोक में, उत्तर प्रदेश राज्य में बी.एन.एस. की धारा 351(3) के तहत अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती है, इसलिए विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान लेते समय मामले को राज्य के मामले के रूप में आगे बढ़ाकर कोई तात्त्विक अवैधता या अनियमितता नहीं की है।

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



13. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कथित चोट के संबंध में कोई चिकित्सीय रिपोर्ट नहीं है, जो प्रथम दृष्ट्या दर्शाती है कि प्राथमिकी झूठे और मनगढ़ंत तथ्यों पर दर्ज कराई गई है। मैं आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से भी सहमत नहीं हूँ, क्योंकि घायल का चिकित्सीय परीक्षण हुआ था या नहीं और चिकित्सीय रिपोर्ट न होने पर उसका क्या प्रभाव होगा, यह साक्ष्य का विषय है, जिसका निर्धारण इस चरण में इन कार्यवाहियों में नहीं किया जा सकता है।

14. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्राथमिकी दर्ज कराने में आठ दिनों का विलंब हुआ है, जो अभियोजन पक्ष के मामले को संदेहास्पद बनाता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कथित घटना का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है, अतः अभियोजन पक्ष का मामला विश्वसनीय नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह प्रतिशोध का मामला है, इसलिए कार्यवाहियाँ जारी रखने योग्य नहीं हैं।

15. इन सभी मुद्दों पर साक्ष्यों के परीक्षण और मूल्यांकन की आवश्यकता है, जो वर्तमान कार्यवाहियों में अनुज्ञेय नहीं है, क्योंकि यह एक लघु विचारण संचालित करने के समान होगा। ऐसे मामले पूरी तरह से विचारण न्यायालय के अनन्य क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते हैं और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर एक पूर्ण विचारण के बाद ही इनका न्यायिक निर्धारण किया जा सकता है।

16. पूर्वोक्त चर्चा के आलोक में, विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित आपराधिक कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करने का कोई ठोस आधार नहीं बनता है। इसलिए, इस आवेदन में कोई मेरिट नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

12 जून, 2026

(माननीय न्यायमूर्ति संजीव कुमार)

अस्वीकरण: "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।